IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

Impact Factor: 7.301

Volume 3, Issue 3, December 2023

पं. दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन पर आधारित शैक्षिक उद्देश्यों का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. गीतू गुप्ता[1] व डॉ. युद्धवीर सिंह[2]

विभागाध्यक्ष, स्ववित्तपोषित बी. एड.,

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थान सिंह रावत राजकीय महाविद्यालय, नैनीडांडा, पौड़ी गढ़वाल[1]

प्राचार्य, कुकरेजा इन्स्टीट्यूट ऑफ टीचर एजूकेशन, देहरादून[2]

सारांश

शिक्षा का वास्तविक अर्थ मनुष्य को मानव बनाना तथा जीवन को प्रगतिशील, सांस्कृतिक एवं सभ्य बनाना है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपनी विचार शक्ति, तर्क शक्ति, समस्या समाधान तथा बौद्धिकता, प्रतिभा, रूझान, धनात्मक भावुकता तथा कुशलता और अच्छे मूल्यों तथा रूचियों को विकसित करता है। शिक्षा के द्वारा ही वह मानवीय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित हो जाता है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। हम ऐसे मानव की कल्पना कर सकते है, जिसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न मिली हो; और जो अपनी सहज प्रवृत्तियों के सहारे ही जीवन यापन करता हो, किन्तु बिना शिक्षा के समाज संभव नही है। **जॉनबुकन** – ”हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते है, यदि हम भविष्य को अपना ऋणी बनायें।“ दीनदयाल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के समन्वय पर विचार देते हुए शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य पर बल दिया है। पुरूषार्थ की प्राप्ति, उत्पादनशीलता का विकास, चरित्र एवं नैतिकता का निर्माण,

सामाजिक नैतिकता का विकास, राष्ट्रीयता का विकास, जीवन मूल्यों का विकास, सर्वांगीण विकास, सास्कृतिक विकास, नेतृत्व की भावना का विकास आदि।

संकेत शब्द – शिक्षा, शैक्षिक उद्देश्य, शिक्षा का लोकतन्त्रात्मक स्वरूप, पुरूषार्थ, उत्पादनशीलता, सामाजिक नैतिकता, जीवन मूल्य, राष्ट्रीयता।

प्रस्तावना – शिक्षा तथा मानव जाति का जन्म–जन्मान्तर का सम्बन्ध है। शिक्षा आन्तरिक वृद्धि एवं विकास की न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है और इसकी अवधि जन्म से मृत्यु तक फैली हुई है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ मनुष्य को मानव बनाना तथा जीवन को प्रगतिशील, सांस्कृतिक एवं सभ्य बनाना है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपनी विचार शक्ति, तर्क शक्ति, समस्या समाधान तथा बौद्धिकता, प्रतिभा, रूझान, धनात्मक भावुकता तथा कुशलता और अच्छे मूल्यों तथा रूचियों को विकसित करता है। शिक्षा के द्वारा ही वह मानवीय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित हो जाता है। शिक्षा का अंग्रेजी प्रयोग लैटिन भाषा के ऐड्रूकेटम से बना है। जिसमें एक दृष्टिकोण के अनुसार एजूकेशन शब्द लतीनी भाषा के एडूकेयर से निकला है, जिसका अर्थ है अन्दर से बाहर लाना। किन्तु नई विचारधारा के अनुसार ये एजुकेयर से निकला है जिसका अर्थ है 'पालन–पोषण करना', 'संवर्द्धन करना या पथ–प्रदर्शन करना'। अतः एजूकेशन का अर्थ है अन्दर से आगे बढ़ाना या अग्रसर करना। इसप्रकार एजूकेशन का अर्थ है बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना। संस्कृत में शिक्षा शब्द शिक्ष् धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है जो 'शिक्ष् शिक्षणे' सीखने–सिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार शिक्षा शब्द का अर्थ हुआ सीखना व सिखाना। जब बालक सीखने की प्रक्रिया में से गुजरता है तो उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन विकासात्मक होता

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

Impact Factor: 7.301

Volume 3, Issue 3, December 2023

है। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ हुआ, वे सभी अनुभव जिन्हें मनुष्य अपने प्रयास से अथवा किसी अन्य की सहायता से ग्रहण करता है तथा जिनके ग्रहण के परिणाम स्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है। शिक्षा का आशय उस शिक्षा से है जिसे व्यक्ति नित्य नये–नये अनुभवों के द्वारा जन्म से मृत्युपर्यन्त प्राप्त करता है। इस प्रकार शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार व्यापक दृष्टि से शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के वे सब अनुभव हैं जिन्हें वह मां की गोद, खेलकूद के मैदान, उत्सव, भ्रमण, सामाजिक संगठन, मेले व धार्मिक क्रिया कलापों के अन्तर्गत सीखता है, लेकिन संकुचित अर्थ में शिक्षा का अर्थ एक निश्चित स्थान, विद्यालय, महाविद्यालय, अथवा विश्वविद्यालय में सम्पन्न होने वाली क्रियाओं से है। शिक्षा का वृहद अर्थ मानव को समाज के अनुकूल बनाना है दूसरे शब्दों में समाज की आकांक्षाओं के अनुरुप मानव के व्यवहार को परिवर्तित करना है। विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों ने अपने–अपने समय में शिक्षा के प्रति अपना दृष्टिकोण दिया है। भारतीय शिक्षाशास्त्री शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया मानते हैं। वस्तुतः शिक्षा एक ऐसा साधन है जो व्यक्ति तथा समाज की प्रगति एवं विकास को गति प्रदान करती है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा –

आधुनिक शिक्षा पद्धति युग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही है शिक्षा और साक्षरता में वृद्धि अवश्य हुई है। शिक्षा से चरित्र का निर्माण होता है पर उसी शिक्षा पाने वाले शिक्षित वर्गों ने सबसे पहले अपना चरित्र खो दिया है और इसका प्रमुख कारण है शिक्षा का व्यावसायिक होना क्योंकि व्यवसाय लाभ हानि का खेल है, सवेंदना भावना का नहीं। जब शिक्षा व्यवसाय बन जाये, व्यवसायियों के हाथ लग जाये तो अपेक्षित आशा संभव नही हो सकती। वर्तमान शिक्षा पद्धति आकड़ों एवं जानकारी में ही सिमट कर रह गयी है क्योंकि अच्छे रोजगार के लिये प्रयुक्त परीक्षा को इन ही कसौटियों में से गुजरना पड़ता है। दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। हम ऐसे मानव की कल्पना कर सकते है, जिसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न मिली हो; और जो अपनी सहज प्रवृत्तियों के सहारे ही जीवन यापन करता हो, किन्तु बिना शिक्षा के समाज संभव नही है। किसी काल में कोई मानव समूह मात्र समाज की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता, उस समूह में प्रत्येक क्षण कुछ व्यक्ति घटते और कुछ बढ़ते रहते है। मानव की आयु मर्यादा के अनुसार एक कालावधि में किसी भी मानव समूह के सभी घटक भौतिक दृष्टि से बदल जाते हैं। किन्तु इसके उपरान्त भी यदि उस मानव समूह का व्यक्तित्व एवं उसकी चेतना बनी रहे, नये घटकों को अपने पुराने घटकों से अपने सम्बन्ध का भान रहे, तथा वे पुराने घटकों की जीवन की अनुभूति को अपनी अनुभूति मानकर और समझ कर आगे चलें तो उस समूह को 'समाज' नाम प्राप्त हो जाता है अर्थात एक के बाद मानव जब दूसरों को; जो प्रायः उसके बाद जन्में हो, विभिन्न क्षेत्रों के अपने सम्पूर्ण अनुभव को अथवा उसमें के सार्वभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करता है, तो इस प्रक्रिया में एक निरन्तर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है जिसे समाज कहते है। अनुभव प्रसारण की इस प्रक्रिया को वास्तव में 'शिक्षा' कहते है। यदि शिक्षा न हो तो समाज का जन्म ही न हो अतः शिक्षा के प्रश्न को मूलतः सामाजिक दृष्टिकोण से देखना होगा। प्रत्येक पीढ़ी के साथ समाज की प्राचीन निधि का संरक्षण, संवर्धन एवं आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरण होता रहता है। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह ऋषि ऋण है, जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्त्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, वास्तव में हमारी उनके प्रति उपकार की भावना नहीं रहती, अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे आगे की पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से उऋण होने की मनीषा रहती है। **जॉनबुकन** ने इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है – "हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते है, यदि हम भविष्य को अपना ऋणी बनायें।"

दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति के जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना में सहायक होनी चाहिये अर्थात् शिक्षा द्वारा बालक को इस योग्य बनाना चाहिये जिससे वह अपने जीवन के आदर्शों एवं मूल्यों की स्थापना में सक्षम हो सकें। व्यक्ति अपने विवेक व बुद्धि द्वारा अपने मूल्यों को पहचान कर अपने आदर्शों व मूल्यों की स्थापना कर सके। उनके अनुसार शिक्षा में सैद्धान्तिकता का अभाव तथा व्यावहारिकता का समावेश होना चाहिये अर्थात् शिक्षा व्यावहारिक होनी चाहिये। शिक्षा बालक के लिये प्रेरक के रूप में होनी चाहिये यानी शिक्षा को बालक को प्रेरित करने वाली शक्ति के रूप में कार्य करना चाहिये। उन्होंने शिक्षा का स्वरूप लोकतन्त्रतात्मक होना स्वीकार किया है अर्थात् शिक्षा द्वारा समान रूप से सभी के विकास एवं प्रगति के उद्देश्य निहित होने चाहिये। जनतन्त्रीय व्यवस्था में देश के सभी नागरिक शासन में भाग लेते है, इसलिये शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में इतनी योग्यता अवश्य उत्पन्न की जानी चाहिये कि वे मतदान के महत्व को समझते हुये अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निभा सकें। शिक्षा में लोकतन्त्रात्मकता के द्वारा उसके मूल्यों का विकास, उत्तम अभिरूचियों का विकास, व्यावसायिक कुशलता का विकास, अच्छी आदतों का विकास, विचार शक्ति का विकास, सामाजिक दृष्टिकोण का विकास, व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास, नेतृत्व का विकास, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास के भाव निहित होने चाहिये।

शैक्षिक उद्देश्य – ऐसे कार्यो या बातों का बोध कराते है जिन्हें हम शिक्षात्मक प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। उद्देश्य शब्द संस्कृत के 'उद्दृष्टि' शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है किसी कार्य को दिशा निर्देश देना। किसी कार्य को करने के पीछे कोई ऐसा परिणाम या फल भी रहता है जो उसके द्वारा हम प्राप्त करना चाहते है, मुख्यतः फल प्राप्ति की यह इच्छा, भावना या विचार, उद्देश्य कहलाता है। उद्देश्य शब्द का शाब्दिक अर्थ भी यही है, यह उत्त तथा दिश दो शब्दों के योग से बना है उत्त का अर्थ है ऊपर की ओर और दिश् का अर्थ है दिशा दिखाना। इस प्रकार उद्देश्य का अर्थ है उच्च दिशा की ओर संकेत और उच्च दिशा एक आदर्श स्थिति की द्योतक होती है उसे सीमा में नही बांधा जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उसका यही अर्थ होता है। वह किसी उच्च दिशा अर्थात् स्थिति की ओर संकेत करता है ऐसी आदर्श स्थिति जिसे सीमा में नही बांधा जा सकता है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार उद्देश्य–

दीनदयाल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के समन्वय पर विचार देते हुए शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य पर बल दिया है जिन्हें निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

पुरूषार्थ की प्राप्ति – भारत में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र आदि के सम्बन्ध में विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थाएँ की गईं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक सभी क्षेत्रों का समन्वित विचार कर सर्वांगीण प्रगति का रास्ता खोजा गया। व्यक्ति जीवन के लिए चार पुरूषार्थ– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास तथा चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की रचना हुई। इन्हीं के आधार पर भारतीय संस्कृति के महत्व को स्वीकार करते हुए दीनदयाल जी ने शिक्षा द्वारा चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति को महत्व दिया जिस से मानवीय जीवन के सभी पक्षों यथा– धर्म अर्थात् नैतिकतापूर्ण व्यवहार व आचरण, अर्थ यानि जीविकोपार्जन में सहायक, काम से आशय अपनी पारिवारिक व सामाजिक जिम्मेदारियाँ तथा मोक्ष जीवन के अन्तिम क्षणों में भगवद् प्राप्ति के लिए सहयोग कर सके। व्यक्ति में अपने जीवन के चार आश्रमों को कुशलतापूर्वक करने योग्य बना सके। अतः शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानवीय जीवन के चारों आश्रमों से सम्बद्ध करते हुए उसे सुखमय व विकसित करने पर बल दिया।

उत्पादनशीलता का विकास – वह शिक्षा जो व्यक्ति को आत्मनिर्भरता की प्रेरणा दे, उसे परिश्रमी बनाये, उसमें मौलिक चिन्तन की प्रवृति उत्पन्न करे तथा उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करे, उत्पादनशील शिक्षा कही जायेगी। दीनदयाल जी ने मनुष्य के उत्पादन स्वात्न्त्रय पर सबसे बड़ा हमला पूँजीवादी औद्योगिकरण को माना अतः उपाध्याय जी औद्योगिकरण का इस प्रकार से

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 3, December 2023

नियमन चाहते थे कि जिससे वह स्वतन्त्र, लघु एवं कुटीर उद्योगों को समाप्त न कर सके। अतः शिक्षा द्वारा औद्योगीकरण द्वारा उद्योंगों का विकास व उत्पादन क्षमता को बढ़ोतरी पर बल दिया जाना चाहिए। उपाध्याय जी का मानना था कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति में जीवन निर्वाह के लिए उसकी क्षमता और योग्यता के विकास को दिशा मिलनी चाहिए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति निर्माण कार्य में संलग्न हो और आधुनिक वैज्ञानिक अविष्कारों का लाभ उठाकर उत्पादन में वृद्धि करें।

चरित्र एवं नैतिकता का निर्माण – दीनदयाल जी का मत था कि "प्रत्यक्ष आचरण और उस आचरण द्वारा व्यक्त होने वाले विचार से ही संस्कार दृढ़ होता है। ऐसे संस्कारों से ही मनुष्य का चरित्र बनता है, इस संस्कार का रूप उनके अनुसार कुछ भी हो सकता है– नियमितता, सौम्य–सरल (सादा) रहन–सहन, स्वदेशी के व्रत का पालन या अपने सहयोगी के साथ अत्यन्त सहृदयता का नाता जोड़ना।" अतः उपाध्याय जी के अनुसार शिक्षा द्वारा बालक के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिससे व्यक्ति का चारित्रिक विकास हो सके। मानसिक एवं शारीरिक विकास के साथ उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण भी बताया। भारतीय दर्शन में आत्म नियन्त्रण अथवा आत्म संयम पर अत्यधिक बल दिया गया है। दीनदयाल जी के अनुसार कुछ तथ्यों को जान लेना ही शिक्षा नहीं है वरन् अपने व्यक्तित्व को नैतिकता के आधार पर ऊँचा उठाना, संस्कृतिजन्य व्यवहार करना शिक्षा है। भारतीय शिक्षा भारतीय दर्शन से प्रभावित होकर नैतिक मार्ग पर चलने का आह्वान करती है।

सामाजिक नैतिकता का विकास – दीनदयाल जी का मत था कि सेवा का अनाधिकार उपयोग एक प्रकार की चोरी है अतः बालकों में शिक्षा द्वारा सामाजिक नैतिकता का विकास किया जाना चाहिए जिससे वह सामाजिक स्तर पर नैतिकतापूर्ण व्यवहार करे। शिक्षा के द्वारा सामाजिक नैतिकता का ज्ञान दिया जा सकता है कि सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं या सुविधाओं के सम्बन्ध में व्यवस्था और नियमों का ध्यान रखते हुए अपना आचरण स्वच्छ रखा जाए। अतः भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से मनुष्य को समाज सेवा का पाठ पढ़ाना चाहिये;

राष्ट्रीयता का विकास – पंडित जी शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालकों में राष्ट्रीय प्रेम एवं राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास किया जाना होना चाहिये। जिससे बालकों में राष्ट्र के प्रति उदार एवं कर्त्तव्य पूर्ण दृष्टिकोण का विकास हो सके। इनका मत था कि "शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय एकता का विकास किया जा सकता है क्योंकि अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं, अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है जो अनेकता में एकता का दर्शन कराता।

जीवन मूल्यों का विकास – "वर्तमान परिस्थिति का सबसे प्रमुख कारण राष्ट्र जीवन का साक्षात्कार न करते हुए, उसके ऊपर विदेशी और विजातीय विचारधाराओं तथा जीवन मूल्यों को थोपने का प्रयत्न है। दीनदयाल जी के अनुसार शीघ्र उन्नति की आतुरता में दूसरे देशों का अंधानुकरण करने तथा 'स्व' के तिरस्कार की वृत्ति पैदा हुई है। इससे राष्ट्र के जन मानस में कुण्ठा घर कर गई है।" अतः उनका मानना है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में अपने जीवन दर्शन अर्थात् भारतीय जीवन दर्शन के प्रति जीवन मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए जिससे वह अपने जीवन में मूल्यों व आदर्शों के निर्माण में भूल न करे और 'स्व' पर विश्वास करते हुए अपना सही विकास करने में सक्षम हो सके।

सर्वांगीण विकास – उपाध्याय जी के अनुसार शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना चाहिये जिससे बालक को अपने आस–पास व ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाये तथा वह एक सफल नागरिक के रूप में शाश्वत् मूल्यों का अनुभव करके आत्म साक्षात्कार कर सके। व्यक्ति के व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक आदि सभी पहलू सम्मिलित हैं।

सास्कृतिक विकास – उपाध्याय जी भारतीय संसकृति और सभ्यता को महत्व देते थे। इन्होंने शिक्षा द्वारा भारतीयों को अपनी मूलभूत संस्कृति से परिचित कराने और तदनुकूल आचरण की ओर प्रेरित करने पर विशेष बल दिया। इनका तर्क था कि मानव

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

Impact Factor: 7.301

Volume 3, Issue 3, December 2023

की विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृतियों में जो भिन्नता है वह हमें पृथक नहीं करती अपितु वह हमें संसार की विविधता का ज्ञान कराती है। ये भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों–चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) चार आश्रम (ब्रह्ममचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संयास), चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) और अतिथि सत्कार में विश्वास करते थे, उनकी इनमें अटूट आस्था थी। ये भारतीयों को इनका स्पष्ट ज्ञान कराने पर बल देते थे, उनको उसी के अनुसार शिक्षा प्रदान करने पर बल देते थे। उपाध्याय जी भारत की संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये शिक्षा को महत्पूर्ण मानते थे तथा इनका विश्वास था कि शिक्षा द्वारा ही संस्कृति को बढ़ाया व हस्तांतरित किया जा सकता है और इसी संस्कृति से विश्व का कल्याण हो सकता है।

नेतृत्व की भावना का विकास – दीनदयाल जी जनतन्त्रीय भावना के प्रबल समर्थक थे अतः उन्होंने शिक्षा द्वारा जनतन्त्र के भावना व विकास पर बल दिया और माना कि जनतन्त्र तभी सफल हो सकता है जब विभिन्न क्षेत्रों में (राजनीतिक, विज्ञान, साहित्य, संगीत, कला आदि) योग्य एवं सक्षम नेता हों। नेतृत्व से तात्पर्य केवल राजनीतिक क्षेत्र में नेतृत्व से नहीं है वरन् सभी क्षेत्रों में योग्य व्यक्तियों के हाथों में ही नेतृत्व होना चाहिये। इसके लिए नेतृत्व की शिक्षा आवश्यक है। नेता में योग्यता, सहनशीलता, दूरदर्शिता, बुद्धिमानी, न्याय, परिश्रमशीलता आदि गुणों का होना अनिवार्य है। इसलिये विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए योग्य एवं समझदार नेताओं की आवश्यकता है और यह कार्य जनतन्त्रीय शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

उपसंहार – पण्डित दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है अतः शिक्षा, समाज की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिये अर्थात् शिक्षा द्वारा बालक को इस योग्य बनाना चाहिये जिससे वह अपने जीवन के आदर्शों और मूल्यों की स्थापना में सक्षम हो सके। पं0 दीनदयाल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के समन्वय पर विचार देते हुये व्यक्ति के जीवन में पुरूषार्थों की प्राप्ति, उत्पादनशीलता का विकास, चरित्र निर्माण, नैतिकता का विकास, आन्तरिक व सामाजिक विकास, जीवन मूल्यों का विकास व राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ–साथ उत्पादनशीलता में वृद्धि, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक उन्नति, कुशल नेतृत्व के गुणों का विकास एवं सर्वांगीण विकास आदि उद्देश्यों पर बल दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्दः1991, द्वितीय संस्करण, ”पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन“ खण्ड–5 (राष्ट्र की अवधारणा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- देवधर, विश्वनाथ नारायणः1987, प्रथम संस्करण ,”पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन“, खण्ड–7 (व्यक्ति दर्शन), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- गुप्त, तनसुखरामः2005, प्रथम संस्करण,”पं0 दीनदयाल उपाध्याय महाप्रस्थान“, सूर्य भारती प्रकाशन,नई दिल्ली–110006
- गर्ग, पंकज कुमारः2003, (सित0–अक्टू0),अंक–55,”दयाल पत्रिका“,पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग ,पंकज कुमारः2005, (सित0–अक्टू0),अंक–66,,”दयाल पत्रिका“,पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2005, (नव0–दिस0),अंक–67,,”दयाल पत्रिका“,पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2006, (जन0–फर0),अंक–68,”दयाल पत्रिका“,पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान(रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2006 ,(मार्च–अप्रैल0),अंक–69,”दयाल पत्रिका“,पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान(रजि0), मेरठ–250001

- जोग, बलवन्त नारायण:1991, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन",खण्ड–6, सुरुचि प्रकाशन,झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- कुलकर्णी, शरद अनन्त:1991, द्वितीय संस्करण ,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन", खण्ड–4,सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
- शर्मा, हरीदत्त:2005 ,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय (राष्ट्रीय जीवन माला)", डायमण्ड पाकेट बुक्स, एक्स–30 ओखला फेज सैकेण्ड, नई दिल्ली
- शर्मा, महेश चन्द्र:2004, द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय" सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001
- शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार:2006, द्वितीय संस्करण, "शिक्षा दर्शन", एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटरर्स, बी–2,विशाल एन्क्लेव,नईदिल्ली–110027
- ठेंगड़ी दत्तोपन्त:1991, द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन", खण्ड–1
- (तत्वजिज्ञासा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055 तिवारी, केदारनाथ:2006, पंचम् संस्करण, "तत्व मीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा", मोतीलाल बनारसीदास, 41,यू0ए0बंग्ला रोड,जवाहरनगर, दिल्ली–110077
- उपाध्याय,दीनदयाल:2007, दशम् संस्करण, "राष्ट्र जीवन की दिशा", लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन राजेन्द्रनगर,लखनऊ–226004
- उपाध्याय,दीनदयाल:2007, अष्टम् संस्करण, "राष्ट्र चिन्तन", लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन राजेन्द्रनगर,लखनऊ–226004
- उपाध्याय, दीनदयाल:2004, नवम् संस्करण, "एकात्म मानववाद", जागृति प्रकाशन,नोएडा–201301
- उपाध्याय, दीनदयाल:1991, द्वितीय संस्करण, "पोलिटिकल डायरी" सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नई दिल्ली–110055